गाय गंगा और मंदिर या समान नागरिक संहिता

भारतीय जीवन पद्धति अकेली ऐसी प्रणाली है जिसमे कुछ बुद्धिजीवी सामाजिक विषयो पर अनुसंधान करते है और निष्कर्ष भावना प्रधान लोगो तक इस तरह पहुंचता है कि वह निष्कर्ष सम्पूर्ण समाज के लिये सामाजिक कर्तव्य बन जाता है। प्राचीन समय से

यही परिपाटी चलती आ रही है। भारतीय जीवन पद्धति विज्ञान और धर्म के संतुलन के रूप मे विख्यात है। गाय गंगा मंदिर पीपल के पेड या तुलसी को पौधो को समाज मे यथोचित सम्मान मिलना इसी प्रणाली का परिणाम है। गाय एक ऐसा उपयोगी पशु है जिसकी उपयोगिता पर अब भी नये नये शोध हो रहे है। गाय को माता के समान स्थान दिया गया। गो हत्या को निषिद्ध कार्य मे सम्मिलित किया गया। गंगा नदी की वैज्ञानिक उपयोगिता देखकर ही उसे अधिकतम पवित्र और साफ रखने की धार्मिक व्यवस्था हुई। गंगा नदी को पार करते समय उसमे तांबे का पैसा फेकना भी एक वैसा ही प्रयत्न माना जाना चाहिये। मंदिरो को आस्था का केन्द्र माना गया। गाय गंगा मंदिर जैसे वैज्ञानिक प्रतीको को आम लोगो के जन मानस मे इस तरह शामिल किया गया, जैसे वह उनके जीवन मरना का प्रश्न हो। विचारवान लोग तर्क के आधार पर रिसर्च करते थे और उस रिसर्च के परिणाम भावना प्रधान समाज तक श्रद्धा के माध्यम से पहुचाते थे। विचार और श्रद्धा के बीच एक अदभूत तालमेल था।

चाहे गाय गंगा मंदिर हो या पीपल का पेड सभी एक बेहतर सामजिक व्यवस्था के लिये उपयोगी थे। मनुष्य एक मात्र

ऐसा जीव था जिसे मौलिक अधिकार प्राप्त हुए । गाय की सम्पूर्ण उपयोगिता और श्रद्धा होते हुए भी गाय को पशु माना गया क्योकि उसे मौलिक अधिकार प्राप्त नही थे। इसी तरह गंगा को पवित्र नदी तथा मंदिर को एक पवित्र उपासना केन्द्र के रूप मे स्वीकार किया गया। मै स्पष्ट कर दू कि सिर्फ मनुष्य को ही मौलिक अधिकार प्राप्त होते है क्योकि मनुष्य सम्पूर्ण विश्व समाज के साथ जुडा हुआ है और गाय गंगा या मंदिर का अब तक वैसा स्थान प्राप्त नही है। इसका अर्थ हुआ कि गाय हमारे लिये आस्था का केन्द्र हो सकती है और किसी दूसरे के लिये नही भी हो सकती है। भारतीय जीवन पद्धति मे अपनी आस्था को किसी दूसरे पर बल पूर्वक नही थोपा जा सकता। जिस तरह गाय के नाम पर व्यक्तियो की हत्याए हो रही है अथवा गंगा के नाम पर जल के अन्य उपयोग मे रूकावट के आंदोलन हो रहे है वे भारतीय संस्कृति के हिस्से नही है क्योकि ये सुविचारित नही है, तर्क संगत नही है, विज्ञान विरूद्ध है तथा पूरी तरह भावनाओ पर आधारित है। बल्कि कभी कभी तो ऐसा लगता है कि गाय गंगा मंदिर का मुददा सुविचारित तरीके से राजनैतिक हथकंडे के रूप मे उपयोग करने का प्रयत्न हो रहा है।

स्पष्ट तथ्य है कि भारत मे भारतीय संस्कृति मे निरंतर गिरावट आ रही है। हिन्दुओ की संख्या लगातार घट रही है और गाय गंगा मंदिर विरोधियो की बढ रही है। यदि हिन्दूओ की संख्या घटती गई तो गाय गंगा मंदिर भी नही बचेगा। किन्तु यदि हिन्दू और हिन्दुत्व बच गया तो गाय गंगा मंदिर खत्म होने के बाद भी फिर से विस्तार पा सकते है। इसका अर्थ हुआ कि 10गाय गंगा और मंदिर की सुरक्षा की तुलना मे हिन्दुत्व की सुरक्षा अधिक महत्वपूर्ण

है किन्तु हमारे रणनीतिकार गाय गंगा मंदिर को हिन्दुत्व की तुलना मे अधिक महत्वपूर्ण मानने का प्रयत्न कर रहे है। वास्तविक स्थिति यह है कि भारत की वर्तमान राजनैतिक स्थिति मे गाय गंगा मंदिर की तुलना मे समान नागरिक संहिता की अधिक उपयोगिता है, क्योकि भारतीय जीवन पद्धति इतनी अधिक सुविचारित और वैज्ञानिक आधार पर स्थापित है कि कोई अलग उसका मुकाबला नही कर सकेगा। समान नागरिक संहिता की तुलना मे हिन्दू राष्ट्र शब्द पूरी तरह घातक और अनुपयुक्त है क्योकि विचार धाराए वैज्ञानिक तथ्यो पर विस्तार पाती है। भावनात्मक प्रचार पर नही। पिछले तीन वर्षो से मै देख रहा हूॅ कि हमारे समान नागरिक संहिता के पक्षधर अनेक मित्र भी हिन्दू राष्ट अथवा गाय गंगा मंदिर को अधिक प्राथमिक मानने लगे है। कुछ लोगो ने समान नागरिक संहिता शब्द का अर्थ भी बदलने का प्रयास किया। उन्होने समान नागरिक संहिता को समान आचार संहिता बना दिया जबकि दोनो एक दूसरे के विपरीत है। यदि भारत मे समान नागरिक संहिता लागु हो जाये तो भारत की अधिकांष समस्याए अपने आप सुलझ जायेगी तथा भारत दूनिया मे मानवाधिकार के नाम पर अग्र ाी देषो मे गिना जाने लगेगा । जबकि गाय गंगा और मंदिर आंदोलन कुछ लोगो के अहम की तुष्टि भले ही कर दे लेकिन दुनियां मे भारतीय जीवन पद्धति अथवा हिन्दू धर्म का सिर उंचा नही हो सकेगा।

जो मित्र गाय गंगा मंदिर के नाम पर कटटर पंथी इस्लाम से टकराने के पक्षधर है वे भूल रहे है कि भावनात्मक मुददो पर टकराव टिकाउ नही हो सकता। ऐसे मुद्दो पर विष्व समर्थन भी नही मिल सकेगा। भारत की राजनैतिक सत्ता के लिये भले ही

ऐसे मुद्दे उपयोगी हो किन्तु विष्व व्यवस्था मे इनका उपयोग नही हो सकता। दूसरी ओर समान नागरिक संहिता एक ऐसा विषय है जिसपर भारत के मुसलमान सहमत भी नही होंगे और विरोध भी नही कर सकेगे। विष्व जनमत भी समर्थन कर सकता है। यदि जल छिटने से साप मर जाये तो लाठी डंडे गोली बंदूक की आवष्यकता क्या है। गाय गंगा मंदिर जैसे मामलो मे सरकार को किसी प्रकार का कोई कानूनी हस्तक्षेप नही करना चाहिये। जिस तरह सत्तर वर्ष बीत गये उस तरह दो चार वर्ष और बीत सकते है।

मै फिर से निवेदन करता हूॅ कि हमे भावनाओ मे बहकर तथा जोश मे आकर कुछ करने की मूर्खता छोड देनी चाहिये और वैचारि तथा होश मे आकर एक मात्र समान नागरिक संहिता के पक्ष मे वातावरण बनाना शुरू करना चाहिये।

मंथन क्रम्ज्ञ।क्-83 बाल श्रम

दुनियां भर मे राज्य का एक ही चरित्र होता है कि वह समाज को गुलाम बनाकर रखने के लिये वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष का सहारा लेता है। भारत की राज्य व्यवस्था भी इसी आधार को आदर्ष मानकर चलती है। बांटो और राज करो की नीति बहुत पुरानी है जो अभी तक चल रही है। इसी वर्ग विद्वेष के आठ उपकर ाो मे उम्र के नाम पर फैलाया गया वर्ग विद्वेष भी शामिल है। बालक,

युवक और वृद्ध के नाम पर तीन अलग अलग समूह बनाकर तीनो के बीच मे भेद भाव पैदा करना राज्य की सर्वोच्च प्राथमिकताओ मे से एक है। इस महत्वपूर�ा कार्य मे राजनैतिक दलो का आपसी भेद भाव भी नही है न्यायपालिका भी लगातार इस कार्य को महत्वर्पू ा समझती है और कार्यपालिका तो सक्रिय रहती ही है। बालक युवा और वृद्ध कभी भिन्न नही होते क्योकि प्रत्येक व्यक्ति

एक निष्चित उम्र तक बालक मध्य काल मे युवक और अंतिम काल मे वृद्ध होता है। परिवार मे रहते हुए भी बालक, युवक, वृद्ध तीनो प्रकार के लोग एक साथ संयुक्त रहते है। अपवाद स्वरूप ही कुछ बालक, युवक या वृद्ध के रूप मे माने जा सकते है जो नितांत अकेले हांे या संयुक्त परिवार से अलग हो।

प्राकृतिक या मौलिक अधिकार सबके समान होते है जिसमे बालक, युवक और वृद्ध का कोई अंतर नही होता। पारिवारिक सामाजिक और संवैधानिक अधिकारो मे कुछ भिन्नता हो सकती है। बालक जब तक बालिग नही हो जाता तब तक परिवार उसका संरक्षक होता है, मालिक नही। परिवार मे बालक समाज या राज्य की अमानत नही होता बल्कि परिवार का एक सहभागी सदस्य होता है। इसका अर्थ हुआ कि बालक की भी परिवार के सभी प्रकार के लाभ हानि मे बराबर की हिस्सेदारी होती है, भले ही सक्रियता के नाम पर उसकी अन्य सदस्यो से कम ही भूमिका क्यो न हो। समाज बालक का अभिरक्षक माना जाता है और राज्य उसका अनुरक्षक। इसका अर्थ हुआ कि राज्य सिर्फ बालक के मौलिक अधिकारो की सुरक्षा की चिंता करता है। साथ ही राज्य का यह भी दायित्व है कि परिवार बालक के संरक्षक होने की अपनी सीमाएं तोड तो नही रहा। इसका अर्थ हुआ कि परिवार यदि अपनी सीमाएं तोडकर मालिक के समान व्यवहार करता है तब राज्य हस्तक्षेप कर सकता है। समाज तभी हस्तक्षेप करता है जब परिवार बालक के संरक्षक के कर्तब्य नही करता। इस तरह तीनो की भूमिका अलग अलग होती है। राज्य या समाज विषेष परिस्थितियो मे ही परिवार के आंतरिक मामलो मे हस्तक्षेप कर सकता है अन्यथा सामान्य स्थिति मे नही कर सकता।

साम्यवादी देष पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था के विरोधी होते है तो पष्चिम के देष पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था को महत्वर्पू ा नही मानते। भारतीय और इस्लामिक व्यवस्था मे परिवार और समाज व्यवस्था को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। भारत जब पष्चिम का गुलाम हुआ और स्वतंत्रता के बाद जब साम्यवादी विचार धारा की तरफ बढता चला गया तब स्वाभाविक था कि भारत की राज्य व्यवस्था मे भी परिवार और समाज व्यवस्था को तोडने या अमान्य करने की बुरी आदत शुरू हुई। वैसे भी भारत नकल करने के लिये प्रसिद्ध है। इतिहास से प्रमा�िात है कि भारत का संविधान बनाने मे भी असल का कोई शब्द भी शामिल नही है। संविधान मे जो कुछ भी लिखा गया है वह सब नकल ही नकल है। इसी नकल के परि ाम स्वरूप भारत मे भी बालिक युवा और वृद्ध के अलग अलग कानून बनने लगे, जबकि परिवार मे तीनो का कोई अलग अस्तित्व होता ही नही है। भारत मे भी पेषेवर लोग, मानवाधिकार, बाल श्रम, पर्यावर ा, जल संरक्ष�ा, बंधुआ मजदूरी आदि के नाम पर विदेषी एजंेट के रूप मे दुकाने

खोलते रहे है और मानवाधिकर पर्यावर ा बालश्रम आदि के नाम पर अच्छा काम कर रही सामाजिक संस्थाओ को किनारे करते जा रहे है। इन पेषेवर लोगो को पष्चिम के देषो से बडी बडी अंतराष्ट्रीय सम्मानजनक पहचान भी दे दी जाती है और इन्हे गुप्त रूप से आर्थिक मदद भी इसलिये दी जाती है कि ये समूह भारत मे बाल श्रम पर्यावर ा और मानवाधिकार के नाम पर वर्ग विद्वेष फैला सके, परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था मे टूटन पैदा कर सके। ऐसे पेषेवर लोगो से भारत सरकार भी प्रभावित रहती है और उन्हे सम्मान देने के लिये मजबूर रहती है भले ही वे भारत के लिये सामाजिक कलंक ही क्यांे न हांे।

भारत के आम नागरिको को अब तक नही पता कि भारत मे बने कानून के अनुसार परिवार अपने बच्चे से अपने घर या दुकान का काम भी नही करवा सकता । यहां तक कि उसकी सहमति से भी नही। पहली बार नरेन्द्र मोदी सरकार ने जब इस कानून को षिथिल कराने की कोषिष की तो कुछ निर्लज मानवाधिकार प्रेमियो ने तो ऐसे प्रयत्न को रोकने का भी प्रयास किया। मोदी सरकार ने दृढ इच्छा षक्ति के सहारे ऐसे सुधार को स्वीकृति दी। फिर भी बाल श्रम के नाम पर अनेक ऐसे कानून भारत मे बने हुए है जो विकास मे भी बाधक है और पारिवारिक व्यवस्था को भी छिन्न भिन्न करने वाले है। ऐसी परिवार तोडक अंतर्राष्ट्रीय लावी भारत मे भी इतनी मजबूत है कि नरेन्द्र मोदी सरीखा सक्षम प्रधानमंत्री भी अभी उन पर हाथ डालने की हिम्मत नही कर पा रहा। विपक्ष को तो मोदी विरोध के अतिरिक्त उचित अनुचित से कोई मतलब ही नही है। 16ऐसा प्रमा�िात किया जा रहा है जैसे बालक सिर्फ राष्ट्र की सम्पत्ति हो और परिवार उसकी अमानत की सुरक्षा तक सीमित हो। बालिग होने के बाद परिवार बालक को राष्ट्र को समर्पित करने के लिये मजबूर होगा ऐसी अवधार ाा मूलतः गलत है। किन्तु भारत की संवैधानिक मान्यता ऐसी ही बनी हुई है। आदर्ष स्थिति ऐसी नही मानी जा सकती कि बालक पर राष्ट्र का ही सर्वोच्च अधिकार है। या तो बालक पर परिवार समाज और राज्य का संयुक्त अधिकार माना जा सकता है अन्यथा उसमे परिवार का आधा और

समाज राज्य का आधा । यह नही हो सकता कि राज्य बालक के मामले मे सर्वे सर्वा बन जाये। इस लिये व्यक्तिगत रूप से मै इस मत का हॅूू कि पूरे भारत मे बालश्रम संबंधी बने किसी भी प्रकार के कानून का पूरी तरह विरोध होना चाहिये। साथ ही बालश्रम के नाम पर पेषेवर दुकानदारो का भी पूरा विरोध होना चाहिये चाहे वे कितने भी सम्मानित क्यों न हों।

मंथन क्रमांक 84 चोरी, डकैती और लूट

प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता उसका मौलिक अधिकार होता है। ऐसी स्वतंत्रता मे कोई भी अन्य किसी भी परिस्थिति मे तब तक कोई बाधा नही पहुंचा सकता जब तक वह स्वतंत्रता किसी अन्य की स्वतंत्रता मे बाधक न हो। कोई भी

व्यवस्था किसी भी स्वतंत्रता की उस व्यक्ति की सहमति के बिना कोई सीमा नही बना सकती। इस तरह अपराध सिर्फ एक ही होता है और वह होता है किसी अन्य की स्वतंत्रता मे बाधा पहुचाना । अपराध दो प्रकार के होते है। 1 बल प्रयोग 2 धोखाधडी तीसरा कोई कार्य अपराध नही होता । मौलिक अधिकार भी चार प्रकार के होते है। 1 जीने की स्वतंत्रता 2 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता 3 सम्पत्ति की स्वतंत्रता 4 स्व र्नि ाय की स्वतंत्रता । इन चारो स्वतंत्रताओ की कोई सीमा उसकी सहमति के बिना तब तक नही बन सकती जब तक किसी अन्य की स्वतंत्रता मे बाधक न हो। अपराध भी पांच प्रकार के होते है । 1 चोरी डकैती और लूट। 2 बलात्कार 3 मिलावट कमतौल 4 जालसाजी धोखाधडी 5 हिन्सा और बल प्रयोग। इन सबमे भी हिंसा बल प्रयोग और धोखाधडी के बिना कोई कार्य अपराध नही होता।

चोरी डकैती और लूट एक ही प्रकार के अपराध होते है जिसमे किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का कोई भाग छिपकर अथवा बल प्रयोग द्वारा अपने अधिकार मे कर लिया जाता है किन्तु चोरी आम तौर पर छिपकर की जाती है और डकैती

या लूट बल प्रयोग के द्वारा। डकैती और लूट मे कोई विषेष फर्क नही होता। यदि लुटेरे पांच से कम है तो उसे लूट कहते है और पांच या उससे अधिक है तो डकैती।

स्वतंत्रता के बाद आबादी करीब चार गुनी बढी है । सरकारो की आर्थिक अथवा तकनीकी सुविधाए आबादी की तुलना मे कई गुना अधिक बढी है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन स्तर बहुत सुधरा है। भीख मागने वाले का भी स्तर उंचा हुआ है। इस तरह अपराधो का ग्राफ बहुत कम होना चाहिये था किन्तु आबादी की तुलना मे कई गुना अधिक बढ गया है। चोरी डकैती और लूट भी स्वतंत्रता के समय की तुलना मे पचीस गुना तक अधिक कह सकते है । ये अपराध निरंतर बढते ही जा रहे है। प्रष्न उठता है कि जब भारत भौतिक उन्नति के मामले मे दुनियां से कम्पीटिषन कर रहा है और विकासषील की जगह विकसित राष्टो की श्रे□ा ी मे शामिल हो रहा है तब ये चोरी डकैती के अपराध स्वयं क्यो नही रूक रहे अथवा सरकारे सफल क्यो नही हो रही।

इस गंभीर प्रष्न पर गंभीरता से विचार मंथन हुआ। आम तौर पर लोग भय के कार ा अपराधो से दूर रहते है। भय तीन प्रकार का हो सकता है। 1 ईष्वर का 2 समाज का 3 सरकार का । ईष्वर का भय निरंतर घटता जा रहा है। समाज को इस प्रकार छिन्न भिन्न किया गया कि समाज का अस्तित्व रहा ही नही। कुल मिलाकर सरकार का भय ही एक मात्र आधार बचता है जिससे चोरी डकैती रूक सकती है। हम सरकार की अगर समीक्षा करे तो सरकार का भय भी इन अपराधो को रोकने मे सफल सिद्ध नही हो रहा है।

भारत नकल करने के लिये प्रसिद्ध हो गया है। दुनियां के विकसित राष्ट अपराध नियंत्र ा करने के बाद जन कल्या□ा के कार्य करते है तो भारत अपराध नियंत्र ा को छोडकर भी जन कल्या□ा के कार्यो मे सक्रिय हो जाता है । स्पष्ट है कि बलात्कार और डकैती दोनो ही अपराध होते है। दोनो मे ही बल प्रयोग होता है । किन्तु डकैती की तुलना मे सरकारे बलात्कार को अधिक गंभीर अपराध मानती

है। जबकि डकैती अधिक गंभीर अपराध होता है। डकैती मे किसी व्यक्ति के स्वामित्व की कोई वस्तु छीनकर उसपर अपना स्वामित्व बना लिया जाता है। बलात्कार मे ऐसा नही होता । इसी तरह किसी धर्म ग्रन्थ का अपमान एक भावनात्मक मुददा है किन्तु उसे भी गंभीर अपराध बना दिया गया है। अवैध बंदूक और पिस्तौल किसी भी परिस्थिति मे रखना गंभीर अपराध होना चाहिये किन्तु बंदूक और पिस्तौल बिना लाइसंेस के भी रखना छोटा अपराध है और गांजा अफीम रखना गंभ्ीार अपराध । किसी आदिवासी हरिजन को गाली दे देना बहुत बडा गंभीर अपराध बना दिया गया है। कोई व्यक्ति किसी की सहमति से वर्षो तक शारीरिक संबंध बनाकर उससे अलग होना चाहे तो वह बलात्कार का दोषी मान लिया जाता है। मै आज तक नही समझा कि यह बलात्कार की कौन सी परिभाषा है। काष्टींग कौच को भी बलात्कार सरीखा अपराध मानने की चर्चा चल रही है जबकि वह शुद्ध सौदेबाजी है। सामाजिक बुराईया रोकने का काम समाज का है। सरकार का नही। सरकार का काम सिर्फ अपराध नियंत्र ा है लेकिन सरकारे सब प्रकार की सामाजिक बुराईया भी रोकने का प्रयत्न करती है। एक सिद्धान्त है कि किसी दायित्व की मात्रा जितनी ही बढती जाती है उसकी गु ावत्ता की क्षमता उतनी ही घटती जाती है।सरकारो की शक्ति सीमित है । यदि सरकारे ओभर लोडेड होती है तो स्वाभाविक है कि उसकी गु ावत्ता घटेगी । सरकारे वास्तविक कार्यो को छोडकर

वर्ग संतुष्टी के कार्यो को प्राथमिकता के आधार पर करना शुरू कर देती है जबकि उन्हे अपराध नियंत्र ा पहले करना चाहिये था। जब तक जान बुझकर बुरी नीयत से किसी की भावनाओ को चोट न पहुंचाई जाये तब तक भावनाओ को चोट लगना किसी भी प्रकार का कोई अपराध नही माना जा सकता है। नीयत का महत्व है भावनाओ का नही। सरकारे भावनाओ का महत्व समझती है, नीयत से मतलब नही रखती है। इसका दुष्परि ााम होता है कि चोरी डकैती सरीखे अपराध बढते चले जाते है। दुख की बात है कि हत्या आतंकवाद जैसे गंभीर अपराधियो के मुकदमे बीस बीस वर्ष चलते रहते है तो बलात्कार के मुकदमे मे त्वरित निपटारो की मांग और प्रयत्न हो रहे है। यहां तक मांग हो रही है कि बलात्कार को हत्या की तुलना मे भी अधिक गंभीर अपराध बना दिया जाये।

एक तरफ तो न्यायपालिका ओभर लोडेड है । चोरी डकैती हत्या के मुकदमे कई दषक तक चलते रहते है तो उत्तर प्रदेष मे खुलेआम अपराधियो को गोली मारने का भी आदेष क्रियान्वित किया जा रहा है। ये दोनो क्रियाए पूरी तरह एक दूसरे के विपरीत है। अच्छा तो यह होता कि न्यायिक प्रकृया के अंतर्गत गंभीर अपराधो मे छः महिने के अंदर निर् ाय करना अनिवार्य कर दिया जाता तो गोली मारने की आवष्यकता ही नही पडती। किन्तु सरकारे न्यायिक प्रकृया को लंबा करते जाती है और यदाकदा जनहित मे अलोकतांत्रिक तरीके अपना लिये जाते है। मेरे विचार से चोरी डकैती लूट का अस्तित्व हमारे लिये एक कलंक है। छुआछूत से भी ज्यादा, गांजा और अफीम से भी ज्यादा। इसे हर हालत मे रोका ही जाना चाहिये। सरकारो को और समाज को भावना और बुद्धि के बीच के अंतर को समझना चाहिये । इस

आधार पर अपनी प्राथमिकता तय करनी चाहिये। बिना विचारे दुनिया की नकल करना हमारे लिये आदर्ष स्थिति नही है। इससे बचा जाना चाहिये।

गंभीर अपराधो की प्राथमिकताएं तय करते समय कुछ मापदंडो पर विचार होना चाहिये। 1 अपराध अपराधी की आवष्यकता थी अथवा इच्छा । 2 अपराध भावना वष हुआ या योजनापूर्वक 3 अपराध के द्वारा अपराधी को कोई भौतिक लाभ हुआ या नही। 4 पीडित पक्ष को भावनात्मक क्षति हुई अथवा भौतिक । इस तरह की अनेक प्राथमिकताओ पर विचार करने के बाद यह धार ाा बनती है कि चोरी चकैती और लूट अन्य भावनात्मक अपराधो की तुलना मे अधिक गंभीर अपराध है। वर्तमान समय मे मेरा कथन कुछ विपरीत दिख सकता है किन्तु इस विषय पर चर्चा होनी चाहिये।

सामयिकी

जब कोई भौतिक पहचान ही किसी की योग्यता और श्रद्धा का मापदंड बन जाती है तब धूर्त और अपराधी उस भौतिक पहचान का सहारा लेकर अपने को आगे बढाते है। यही स्थिति राजनीति मे खादी की हुई तो धर्म मे सन्यासी शब्द और उसकी वेष भूषा की। आषाराम रामरहीम सरीखे सैकडो अपराधी सन्यासी वेष भूषा मे अपना गुजर बसर और शाही सम्मान सुख सुविधा का भोग करते रहे है। कुछ समय पहले तक मुझे भी ऐसा लगता था कि वास्तव मे ईष्वर के यहां न्याय नही है तभी तो ईष्वर के नाम पर भोले भाले भक्तो को धोखा देने मे ये लोग सफल हंै। ऐसे नकली साधु संत धर्म की आड मे अनेक गंभीर अपराध तक करते रहे है। यहां तक कि हिंसा और ष ायंत्र मे भी पीछे नही रहे। वर्तमान घटना क्रम से बिष्वास हो चला है कि ईष्वर है। ऐसे साधु संत बडे बडे अपराध करके साफ बचते रहे है किन्तु छोटे अपराध मे भी वे आजीवन कारावास का दंड भोगने को मजबूर हो रहे है। स्पष्ट है कि अपराधियो को उचित दंड तो मिल रहा है भले ही हत्या हिंसा ष ायंत्र धोखा के बदले महिला उत्पीडन के नाम पर ही क्यो न मिले। मै इस प्रकार गलत तरीके से हो रहे सही कार्य का समर्थन करता हॅू। अन्य आपराधिक प्रवृत्ति के साधु संतो को सबक सीखना चाहिये कि वे बडे बडे ष ायंत्र करके भले ही बच रहे हो किन्तु पाप का घडा कभी भी भरकर फूट जायेगा और उन्हे आभाष भी नही होगा यह किसी को पता नही है। ईष्वर का उपयोग करना ही पर्याप्त नही है उसकी शक्ति से डरना भी चाहिये।

सामयिकी

मै लम्बे समय से लिखता रहा हॅू कि सरकार का अर्थ न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका का समन्वित स्वरूप होता है। मेरे विचार मे कार्यपालिका मे महत्वपू ा भूमिका सचिव स्तर से लेकर नीचे तक के कर्मचारियों की होती है। पिछले मंथन कार्यक्रम मे चर्चा के बाद कुछ अलग अर्थ समझ मे आये जिसके अनुसार कार्यपालिका और सरकार का अर्थ कुछ भिन्न होता है। इसलिये सामयिकी के अंतर्गत यह चर्चा प्रेषित है।

पूरी दुनियां मे तानाषाही सबसे अधिक निकृष्ट और सफल व्यवस्था मानी जाती है। वर्तमान लोकतंत्र तानाषाही की तुलना मे अधिक अच्छी और असफल व्यवस्था मानी जाती है। एक संषोधित लोकतांत्रिक व्यवस्था पर सोचा जाना चाहिये।

लोकतंत्र के कई प्रकार हो सकते है। एक लोकतंत्र आदर्ष माना जाता है जिसे लोक स्वराज्य कहते है। दूसरे लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र कहते है। तीसरा लोकतंत्र वह है जिसे वर्तमान लोकतंत्र कहते है। लोकस्वराज्य तो अभी युटोपिया की तरह माना जाता है जिसका दुनियां मे कोई स्वरूप स्पष्ट नही हुआ है। लोकस्वराज्य मे लोक मालिक होता है और तंत्र मात्र प्रबंधक। लोक स्वराज्य मे नीचे की ईकाईयां उपर वाले को अधिकार देती है और जब चाहे वापस ले सकती है।

सहभागी लोकतंत्र एक बीच की व्यवस्था है। इसमे कुछ अधिकार तंत्र के पास होते है और अधिकांष अधिकार लोक के पास होते है। लोक और तंत्र के बीच एक समझौता होता है। उक्त समझौते को संविधान कहते है। वर्तमान लोकतंत्र जो सारी दुनियां मे प्रचलित है वह संसदीय लोकतंत्र माना जाता है। इसमे भी कई भाग है, जिनमे पष्चिम का लोकतंत्र अच्छा माना जाता है और दक्षि ा एषिया का विकृत क्योकि पष्चिम के देषो मे संविधान संषोधन मे लोक की भी आंषिक भूमिका रहती है, जबकि दक्षि ा

एषिया के देषो मे संविधान पर तंत्र के असीम अधिकार होते है। यहां लोक की संविधान संषोधन मे न कोई प्रत्यक्ष भूमिका होती है न ही अप्रत्यक्ष। लोक स्वराज्य मे तंत्र को प्रबंधक या मैनेजर कहा जाता है जबकि लोकतंत्र मे उसे सरकार कहते है। सहभागी लोकतंत्र मे सरकार का अर्थ होता है न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका का समन्वित स्वरूप। सहभागी लोकतंत्र मे इन तीनो का एक दूसरे पर पूरा नियंत्र ा होता है किन्तु कोई भी एक अपनी सीमा नही तोड सकता। संसदीय लोकतंत्र मे सरकार का अर्थ कार्यपालिका को माना जाता है। विधायिका का अर्थ कानून बनाने वाली और संविधान संषोधन करने वाली इकाई के रूप मे माना गया है तो संसदीय लोकतंत्र मे मंत्रीमंडल को ही सरकार मान लिया गया है। इसका अर्थ हुआ कि मंत्रीमंडल के नीचे जो नियुक्तियां होती है वे सरकार के नौकर या कर्मचारी माने जाते है, सरकार के भाग नही। मैने अब तक यह भ्रम पाल रखा था कि सरकारी कर्मचारी कार्य पालिका के अंग है किन्तु पिछले दिनो मंथन मे चर्चा तथा संविधान विद सुभाष कष्यप से बात करने के बाद स्पष्ट हुआ कि भारत मे कार्यपालिका का अर्थ मंत्रिमंडल तक सीमित होता है। कर्मचारी उसके सहयोगी होते है, सहभागी नही। मंत्रीमंडल की कानून बनाने मे भी बहुत भूमिका रहती है। यही कार ा है कि मंत्रीमंडल संसदीय लोकतंत्र मे अन्य सभी इकाईयो पर भारी पड जाता है। लोकतंत्र की वर्तमान परिभाषा ही अनेक समस्याओ की जड है। मंत्रीमंडल को या तो कार्यपालिका तक सीमित होकर विधायिका से अलग हो जाना चाहिये अथवा विधायिका तक सीमित होकर कार्यपालिका से अलग हो जाना चाहिये। किन्तु दोनो जगह मंत्रीमंडल का बढा महत्व उसे सरकार के रूप के स्थापित कर देता है जो अप्रत्यक्ष रूप से आंषिक तानाषाही का स्वरूप ग्रह ा कर

लेता है। तानाषाही के विकल्प के रूप मे तो संसदीय लोकतंत्र को अच्छा मानना हमारी मजबूरी है, किन्तु जब तानाषाही का दूर दूर तक खतरा नही है तब लोकतंत्र के किसी नये विकल्प की तलाष होनी चाहिये। मै स्पष्ट कर दूं कि कार्यपालिका का स्वरूप क्या हो और क्या है, इस संबंध मे मै पूरी तरह साफ नही हॅू। इस संबंध मे और अधिक मंथन की आवष्यकता है।

सामयिकी

निर्भया कांड के समय संभवतः मै भारत का अकेला व्यक्ति था जिसने बलात्कार के लिये कडे कानून को और कडा करने का खुला विरोध किया था। यहां तक कि मैने जस्टिस वर्मा आयोग की सिफारिषो को भी घातक माना था। मैने स्पष्ट लिखा था कि यदि इस प्रकार कानून कडे किये गये तो भारत मे बलात्कार तो बढेंगे ही साथ साथ हत्याओ की भी बाढ आ जायेगी। आप दिसम्बर 2013 के ज्ञानतत्व 260 और 262 के लेख पढ सकते है। उसके बाद भी मैने कई बार इस संबंध मे लिखा । दबे छुपे मुलायम सिंह और शरद यादव भी इस मत के थे किन्तु नेतागिरी के कार ा बोल नही सकते थे। पांच वर्ष बाद परि ााम वही हुए। बलात्कार तो बढे ही जिनके लिये यह कहा जा सकता है कि उस समय अनेक घटनाएं प्रकाष मे नही आती होगी किन्तु बलात्कार के साथ हत्याओ की बाढ का एकमात्र कार ा निर्भया कं ाड के बाद बनाये गये कठोर कानून के अतिरिक्त कुछ और नही। तंत्र अपनी भूल न सुधार कर कानून अधिक कठोर करेगा और उसी अनुपात मे बलात्कार एंव हत्याओ का विस्तार होता रहेगा।

प्राचीन समय मे गंभीर बलात्कार को छोडकर साधार ा छेडछाड की घटनाए प्रकाष मे नही आती थी। अधिकांष सामाजिक स्तर से निपटती थी। अब उसके ठीक विपरीत ऐसी घटनाओ को बढा चढाकर प्रचारित करना एक फैषन बनता जा रहा है। कितनी विचित्र हालत है कि उन्नाव के एक ऐसे अपराधी दादा जिनसे सारा इलाका डरता था उन पर अंकुष के सारे प्रयत्न असफल होने के बाद अन्त मे बलात्कार के एक अस्पष्ट आरोप का सहारा लेना पड रहा है। बलात्कार की यह घटना बिल्कुल विलक्ष ा नही। आम तौर पर ऐसे रसूखदार लोग अपने आस पास की लडकियो के साथ ऐसे अनुचित संबंध बनाते रहे है। इस लडकी ने हिम्मत करके रिपोर्ट की तो रिपोर्ट दबा दी गई। विधायक ने लडकी के माता पिता को समझाने और दबाने का प्रयास किया तब भी परिवार नही दबा। विधायक के भाई ने अपने पूर्व स्वभाव के अनुसार लडकी के पिता को इतना पीटा की पिता मर गया । मै नही मानता कि इस घटना मे महिलाओ पर अत्याचार की कोई विषेष घटना है।

कठुआ की घटना कुछ विषेष स्थान रखती है । मुझे स्वयं समझ मे नही आया कि संभावित घटना क्रम क्या हो सकता है। मैने कई गंभीर लोगो से संभावनाओ की चर्चा की, किन्तु सब मेरे समान ही भ्रम मे मिले । हम सब मानते रहे कि घटना जैसी प्रचारित है वैसी असंभव है किन्तु यदि भिन्न भी है तो क्या हो सकती है यह किसी के समझ मे नही आया। साफ स्थिति तो कुछ दिन बाद ही पता चलेगी किन्तु एक धुंधली तस्वीर स्पष्ट हो रही है कि एक हिन्दू नाबालिग ने एक मुस्लिम

आठ वर्ष की छोटी बच्ची का अपहर ा करके बलात्कार किया। लडकी चिल्लाना चाहती थी तो उसे नषा देकर चुप किया गया। लडकी द्वारा विरोध के कार ा उसे रोक कर रखा गया। लडके का चचेरा भाई आता है तो वह भी लडकी से बलात्कार करता है। घटना के सामने

आने के डर से उसे मंदिर मे छिपाया जाता है जहां उसके साथ अन्य लोग भी बलात्कार करते है। लडके के पिता घटना को छिपाने के लिये पुलिस वालो को पैसा देता है । पुलिस वालो मे से भी कुछ लोग बलात्कार करते है। लडकी चुप रहने को तैयार नही और बात सामने आना बहुत खतरनाक है इसलिये लडकी की हत्या का मार्ग चुना गया। हत्या के बाद पुलिस जांच शुरू होती है। जिसमे कोइ्र ईमानदार पुलिस वाला बिना प्रभावित हुए जांच करता है। मामले मे एक नाबालिग की गिरफतारी के बाद मुसलमानाो की ओर से जुलुस और नारे लगते है। लडके के जिस पिता ने बेटे को बचाने का प्रयास किया वह हिन्दू संगठनो से जुडा होगा । हिन्दू संगठनो ने उसके पक्ष मे जुलुस निकाला। वकीलो ने भी उसके पक्ष मे प्रभाव डाला । पूरा मामला एक स्वाभाविक घटना का विस्तार है। कही महिला उत्पीडन नही है, कही हिन्दू मुस्लिम का भाव नही है। समाज के अतिवादी हिन्दू मुस्लिम संगठन बिना सच्चाई जाने ऐसे आंदोलनो के लिये रात दिन तैयार मिलते है। फिर भी कठुआ मामले की जिस तरह आम हिन्दुओ ने एक स्वर से निन्दा की वह आम हिन्दू और आम मुसलमान के बीच एक स्पष्ट विभाजन रेखा खीच देती है। ऐसे ऐसे संवेदन शील मामलो मे भी देखा जाता है कि आम मुसलमान या तो चुप रहता है या किन्तु परन्तु लगाकर बोलता है जबकि आम हिन्दू ने इस घटना की एक स्वर से बिना किन्तु परन्तु के निंदा की।

उन्नाव का सच तो स्पष्ट है किन्तु कठुआ का सच आगे पता चलेगा। मेरा उददेष्य भी किसी घटना विषेष की चर्चा मे न जाकर बढते बलात्कारो तक सीमित रहना है। मेरे विचार मे राजनेताओ द्वारा बनाये गये अप्राकृतिक अस्वाभाविक कानून ही बलात्कार और हत्याओ की बाढ के प्रमुख कार ा है । जिन लोगो को समाज शास्त्र का रत्ती भर ज्ञान नही वे ऐसे ऐसे विषयो पर वर्ग विद्वेष बढाने की बुरी नीयत से कानून की समीक्षा करेंगे तो परि ा ाम ऐसे आने ही है। यदि दंडित करना ही आवष्यक हो तो पहले ऐेसे ऐसे अव्यावहारिक कानून बनाने वालो को सामाजिक दंड की शुरूआत करनी चाहिये जिनकी नीयत भी गलत है और नीतियां भी। अभी तो इक्का दुक्का नाबालिग षिकार हो रही है भविष्य मे कही ये घटनाए आम न हो जावे । यदि कानून को और अधिक कठोर किया गया तो तीन परि ा ाम संभावित है - 1 बडी संख्या मे निर्दोष लडकियों की हत्या हो जायेगी । 2 बडी संख्या मे भावना प्रधान लडके फांसी चढ जायेगंे। 3 बडी संख्या मे धूर्त महिलाएं शरीफ लोगो को ब्लैकमेल करने लगेंगी।

सामयिकी

मै न्यायिक सक्रियता के विरूद्ध रहा हूॅ। साथ साथ मै विधायिका की अति सक्रियता के भी विरूद्ध रहा हूॅ। विधायिका की अति सक्रियता से परेषान न्यायपालिका ने संवैधानिक तरीके से जनहित याचिकाओ की अनुमति दी थी और पूरे भारत ने उसकी प्रषंसा की थी, भले ही वह न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र का आदेष नही था। स्वाभाविक है कि जनहित याचिकाओ का जमकर दुरूपयोग हुआ। पेषेवर मानवाधिकारवादी पर्यावर ा वादी या एन जी ओ ने जनहित याचिकाओ को अपने व्यवसाय का एक माध्यम बना लिया। आज सुप्रीम कोर्ट ने अपनी उस भूल को सुधारते हुए यह टिप्प ाी की है कि जनहित याचिकाओ का खुलेआम दूरूपयोग हो रहा है । वैसे तो यह बात लम्बे समय से अनुभव की जा रही थी किन्तु पिछले कुछ वर्षो से तो यह एक फैषन सरीखे बन गई थी। जनहित की परिभाषा न्यायालय नही कर सकता । जनहित की परिभाषा तो एकमात्र विधायिका ही कर सकती है और यदि विधायिका जनहित की गलत परिभाषा करती है तो विधायिका पर नियंत्र ा जन का ही हो सकता है, न्यायपालिका का नही। न्यायपालिका सिर्फ व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारो की संरक्षक होती है इससे अधिक न्यायपालिका की भूमिका तभी होती है जब संविधान के विरूद्ध कोई कार्य हो रहा हो। अभी भी न्यायपालिका ने अपनी भूल मे आंषिक संषोधन ही किया है । वास्तविक सुधार तो तब माना जायेगा जब न्यायपालिका जनहित को परिभाषित करना बंद करके यह कार्य विधायिका पर छोड देगी और जनहित याचिकाओ पर पूरा प्रतिबंध लगा देगी।

जबसे न्यायपालिका सर्वोच्च का अलोकतांत्रिक विचार न्यायाधीषो तथा अधिवक्ताओ के मन मे आया तब से ही

ये संभावना दिखने लगी थी कि न्यायपालिका मे भ्रष्टाचारा भी बढेगा और गुटबंदी भी होगी। धीरे धीरे दोनो बाते साफ होती गई । न्यायपालिका मे सर्वोच्च स्तर पर दो गुट बने जिसमे एक गुट का नेतृत्व वरिष्ठ वकील प्रषान्त भूष ा ने संभाला तो दूसरे गुट का नेतृत्व कुछ छोटे वकीलो के पास रहा। सर्वोच्च न्यायाधीष भी दो गुटो मे बट गये। राजनीति भी इस न्यायिक विवाद मे शामिल हो गई। गुटबंदी स्वाभाविक थी क्योकि प्रषान्त भूष ा एक ऐसे वकील माने जाते है जिनकी सोच वामपंथ की तरफ अधिक झुकी हुई है। वे इमानदार हैं, हिम्मती हैं किन्तु न्याय और व्यवस्था के संतुलन के विरूद्ध न्याय के पक्ष मे अधिक

झुक जाते है। परि ाम होता है अव्यवस्था और अन्याय । न्यायपालिका के बीच टकराव तो जनहित मे है क्योकि लोकतंत्र मे किसी को सर्वोच्चता का घमंड नही पालना चाहिये। साथ ही प्रषांत जी से मेरी अपेक्षा है कि न्याय और व्यवस्था का संतुलन न बिगडे उस दिषा मे भी उन्हे सोचना चाहिये।

हम जस्टीस लोया की मृत्यु की चर्चा करे । अमित साह का केष देख रहे जज का एकाएक ट्रान्सफर करके जब जस्टीस लोया की नियुक्ति हुई थी तब भी इसी तरह यह कहकर हो हल्ला हुआ था कि जस्टीस लोया को किसी योजना के अंतर्गत लाया गया है। उनकी मृत्यु के बाद सारा प्रचार उलट जाता है। अब उनकी मृत्यु मे ष ायंत्र नजर

आने लगता है और वह भी तीन वर्ष बाद । जस्टीस लोया की मृत्यु के बाद पोस्टमार्टम होता है। साथ मे चार जज है तीन वर्षो तक संदेह की गुंजाइस

नही है। एकाएक बंबई हाई कोर्ट मे कुछ शुरूआत होती है। संदेह होता है कि बंबई हाई कोर्ट मे न्यायपालिका और विपक्षी

योजनाकारो के बीच कोई गुप्त सेटिंग हो सकती है। ऐसी सेटिंग की हवा उस समय निकल गई जब सुप्रिम कोर्ट ने सारा मामला अपने हाथ मे ले लिया। सुप्रिम कोर्ट ने न्याय किया या पक्षपात यह नही कहा जा सकता। किन्तु यह स्पष्ट है कि जस्टीस लोया की स्वाभाविक मृत्यु को आधार बनाकर विपक्ष अमित साह को कटघरे मे खडा करना चाहता था। वह प्रयत्न असफल हो गया।

मै स्पष्ट हूॅ कि भारत वर्तमान मे दो विचारधाराओ के बीच संघर्षरत है–1 वामपंथी विचारधारा 2 दक्षि□ा पंथी विचारधारा । पूरा विपक्ष आंषिक रूप से वामपंथी विचारधारा से समझौता करके चल रहा है तो पूरी सत्ता दक्षि□ापंथी विचारधारा से समझौता करके चल रही है। चार वर्षो से जारी इस टकराव मे सत्तारूढ पक्ष मजबूत हो रहा है। कभी साहित्य के नाम पर पुरस्कार वापसी होती है तो कभी कालेज के नाम पर जे एन यू आगे आ जाता है। कभी महिलाओ के नामपर तो कभी दलितो के नाम पर वामपंथ अपनी शक्ति दिखाता रहता है, क्योकि पूरे विपक्ष तथा कटटरपंथी इस्लाम का उसे समर्थन रहता है। अब न्यायपालिका भी विचारधाराओ के आधार पर विभाजित हुई है। न्यायाधीष से लेकर वकील तक दो गुटो मे बट गये है। न्यायपालिका मे भी यही टकराव स्पष्ट हुआ है । लगता है कि न्यायपालिका मे भी वामपंथी विचारधारा पराजित होगी। ज्यो ज्यो ऐसी विचारधारा के पक्षधर न्यायाधीष रिटायर्ड होते जायेगे त्यो त्यो न्यायपालिका मे भी तटस्थ अथवा दक्षि ा पंथी विचारो के लोगो का प्रवेष बढता जायेगा।

ऐसा होना उचित है या अनुचित इस पर मै कुछ नही कह रहा किन्तु वामपंथी विचारधारा का मै प्रारंभ से विरोधी रहा हूॅ और यदि उसे चुनौती देने के लिये कोई अन्य आगे आता है तो मै ऐसी चुनौती का समर्थन कर सकता हूॅ। न्यायपालिका के वर्तमान विवाद मे मै सुप्रीम कोर्ट के वर्तमान र्नि ाय का समर्थन करता हूॅ।

प्रष्नोत्तर

शेखर गुप्ता वरिष्ठ पत्रकार द्वारा दैनिक भास्कर 25 अप्रैल

प्रश्न– बासु भट्टाचार्य ने वैवाहिक मतभेद पर तीन फिल्मे बनाई थी, जिसमे संजीव कुमार और तनुजा ने तन्हा पत्नी की भूमिकाएं निभाई थी। ढाई घंटे के उतार चढाव के बाद पति पत्नि के बीच नाटकीय संवाद होता है। तनुजा संजीव कुमार से पूछती है, आप रोज हर किसी की समस्याओ पर संपादकीय लिखते है। क्या आप हमारी समस्याओ पर भी लिखेंगे?

अब सुप्रीम कोर्ट के माननीय जजों को इसी स्थिति मे रखकर देखिये । पिछले सप्ताह जज बी एच लोया के निधन की स्वतंत्र जांच की मांग वाली जनहित याचिकाएं खारिज करते हुए मुख्य न्यायाधीष दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली बेंच के लिये फैसला लिखते हुए जस्टिस डीवाई चंद्र चूड ने याचिका कर्ताओं और उनके वकीलो को रत्तीभर सबूत के बिना अपमानजनक आरोप लगाकर स्कैंडल खडा करके संपूर्ाा न्यायपालिका को नुकसान पहुचाने के लिये फटकार लगाई। फैसले मे न्यायपालिका को वकीलो आंदोलनकारियों मीडिया व अन्य से बचाने की इच्छा से क्रोध व्यक्त हुआ। ऐसा लगता है जैसे हर कोई न्यायाधीषो के पीछे पडा है और वे बचाव करने मे लगे है। क्या हम उनसे अनुभव की तनुजा का सरल सा प्रष्न दोहराकर पूछ सकते है। आप न्यायपालिका को दूसरो से बचाने के लिये फैसले लिखते रहते है। क्या आप एक फैसला ऐसा भी लिखेगे कि न्यायपालिका को जजो से कैसे बचाये? मैने यह बहुत ही सतर्कता बररते हुए लिखा है क्योकि न्यायाधीषो ने कहा कि वे लोया केष के बहुत ही प्रतिष्ठित वकीलो व याचिकाकर्ताओ को उदारता दिखाते हुए आपराधिक अवमानना से बख्श रहे है। संभव है एक मामूली संपाकद पर वही उदारता नही दिखाई जाये । हालांकि तथ्य तो रखने होगे और उनपर बहस करनी होगी ।

यह समय फैसले के गु ा दोष पर चर्चा का नही है। जब न्यायपालिका बाहरी वायरसो को भगाने मे लगी है तो खुद ही आटो इम्युन रोग का षिकार हो गई है। वह स्थिति जब शरीर खुद को ही खाने लगे। आप फैसले के व्यापक बिन्दुओ से सहमत हुए बिना नही रह सकते । एक जनहित याचिकाओ का दुरूपयोग हो रहा है। लोगो ने अदालत मे राजनीतिक व्यक्तिगत और वैचारिक झगडे लाकर अपना कैरियर बना लिया है। उनका वक्त बर्बाद कर न्याय मे हो रहे विलंब मे योगदान दिया है। दो न्यायाधीष झूठ नही बोलते कम से चार जज मिलकर तो नही बोलते । तीन यह कहना अतिषयोक्ति है कि एक व्यक्ति पूरी न्यायपालिका को नियंत्रित करता है। यह असंभव है । आईये तथ्यो को जांचे । यह फैसला जिस दिन आया उस दिन अखबारो मे खबर थी कि बांम्बे हाईकोर्ट ने एक जनहित याचिका के आधार पर महाराष्ट मे आई पी एल मैचो के दौरान पानी के उपयोग पर पाबंदियां लगा दी। कितना पानी बचा यह छोड दीजिये पर क्या क्रिकेट लीग जनहित याचिका माननीय कोर्ट के वक्त की हकदार है जब उसके पास कई महत्वर्पू ा मामले है? न्यायाधीषो की बुद्धिमत्ता पर सवाल उठ सकता है पर कभी उनके कदमो मे इरादे नही थोपे जाने चाहिये। लोया फैसला कहता है कि जनहित याचिका प्रचार चाहने वाले लोगो के लिये दिखावा बन गई है। क्या न्यायाधीष खुद से पूछेगे कि क्या वे ऐसे ही प्रलोभन मे तो नही आये है। मेरे सहयोगी मनीष छिब्बर उच्च न्यायपालिका को निकट से देखते है । उनकी सहायता से मैने बी सी सी आई के अलावा रोचक उदाहर ाो की सूची बनाई है। बी सीसी आई ने तो साल भर से ज्यादा वक्त से भारतीय क्रिकेट का प्रषासन सुप्रीम कोर्ट पर छोड दिया है और अंत दिख नही रहा है। क्रिकेट बेंच

(किसी संवैधानिक लोकतंत्र मे ऐसा सुना है?) के मुखिया सी जे आई ने हाल मे खेल मे जुए सटटे को कानूनी बनाने की

याचिका स्वीकार की है। चीफ जस्टिस बनने के पहले जस्टिस मिश्रा ने सिनेमा हाल मे राष्टगान बजाना अनिवार्य कर दिया था जो काफी बाद मे रदद किया गया। हर जनहित याचिका ने सुर्खी बनाई । याचिका कर्ता को कोई नही जानता । फिर उन्हे ही सुर्खियां बटोरने का दोष क्यो दिया जाय? तथ्य यह है कि जनहित याचिकाओ से कई जजो ने अपने न्यायाधिकार व शक्तियों को विस्तार दिया है। वे प्रायः कार्यपालिका के दिन प्रतिदिन की झंझटो मे चले जाते है जिसमे से बाहर आने का रास्ता नही होता । राजधानी मे बीस साल पहले कोर्ट ने हवा की गु ावत्ता सुधारने के लिये समिति बनाई थी। 18 मुख्य न्यायाधीषो के बाद भी यह मौजूद है। यही राजधानी मे अवैध निर्मा ा व अतिक्रम□ा के मामले मे हुआ। जनहित याचिका का जरूरत से ज्यादा उपयोग हुआ है पर न्यायाधीष भी समस्या मे भागीदार है। दूसरा सिद्धान्त था जजो के और वह भी चार जजो के एक साथ झूठ न बोलने का। क्या यह सुप्रीम कोर्ट के उन चार वरिष्ठतम जजो पर लागू नही होता जो महीनो से न्यायिक प्रषासन को लेकर सार्थक मुददे उठाते रहे है । क्या उनकी चिंता को गलत बताकर खारिज कर दे जबकि महाराष्ट के चार जजो के शब्दो को यथावत ले लिया जाता है । मै मूर्ख नही हॅू कि ऐसा संकेत दू ॅ कि जिलाजज झूठे है । शीर्ष जजो के बारे मे ऐसा मानने के लिये तो मै विक्षिप्त ही कहलांउगा पर इन प्रष्नो पर बहस और आत्म निरीक्ष□ा की जरूरत है। न्यायिक अधिकार क्षेत्र का यह विस्तार न्यायपालिका की जनहित याचिका की मदद से सुर्खियो मे बने रहने की प्रवृत्ति और अपना घर ठीक करने की उसकी नाकामी इन सब ने मिलकर इस संस्थान को बाहरी लोगो से अधिक नुकसान पहुचाया है। आप हवा की गु ावत्ता सुधारने और क्रिकेट का संचालन करने मे व्यस्त है और कार्यपालिका नियुक्तियो को लंबित करके आपके साथ खेल रही है। संस्थानो के बीच मामूली तनाव ठीक है लेकिन अगर उनमे से एक बेहद कमजोर हो जाये तो दूसरा उसकी जगह हथियाने लगता है। यही हो रहा है । न्यायाधीष लड रहे है और नेता हस रहे है। अब हम फैसले के तीसरे बिंदु पर आते है । यह कहना गलत है कि एक व्यक्ति न्यायपालिका को नियंत्रित कर सकता है। सिद्धांततः इस पर विवाद नही है पर हकीकत मे हम ऐसे हालत मे गुजर चुके है । बस वह पुरूष नही एक महिला इंदिरा गांधी थी। उस वक्त एच आर खन्ना के रूप मे एक महान न्यायाधीष के साहस ने हमे उस स्थिति मे पहंचने से बचाया था जिसमे आज एर्दोगन की तुर्की है। वर्ष 2018 के भारत को ऐसे कई न्यायाधीषो की आवष्यकता है । क्योकि चुनौतिया केवल बाहर से नही भीतर से भी है।

उत्तर- मै आपके इस विचार से सहमत हॅू कि जनहित याचिकाए न्यायपालिका द्वारा विधायिका की उच्चश्रृखलताओ पर अंकुष लगाने के लिये शुरू की गई थी जो आगे चलकर न्यायिक तानाषाही का माध्यम बनने लगी। जनहित याचिकाओ का विचार

प्रारंभ से ही असंवैधानिक था और आज भी है किन्तु प्रारंभ जनहित मे था और वर्तमान जनविरोधी। आज जनहित याचिकाओ का जो दुरूपयोग हो रहा है उसमे सबसे अधिक दोषी न्यायपालिका ही है। जनहित को परिभाषित करने का एक मात्र दायित्व विधायिका का है । उसमे न्यायपालिका की भूमिका लगभग शून्य होती है किन्तु न्यायपालिका ने शून्य भूमिका को अंतिम भूमिका बना दिया जिसके दुष्परिणाम हुए।

लोया मामले मे चार जजो ने जो गवाही दी वह किसी घटना के संबंध मे साक्ष्य थी न कि अभिमत जबकि सुप्रीम कोर्ट के चार जजो के विचार किसी घटना के साक्ष्य न होकर उनके अभिमत थे । इसलिये दोनो को एक साथ नही देखा जा सकता । चार जजो की गवाही विश्वसनीय हो सकती है और विचार नही भी हो सकता है। केशवानंद भारती प्रकरण मे तेरह जजो की फुल बेंच बैठी थी और निर्णय एक के बहुमत से हुआ था जिसका अर्थ हुआ कि छ जजो का विचार अमान्य हुआ । चीफ जस्टीस प्रकरण मे तो सिर्फ चार जजो ने ही अपना मत व्यक्त किया है। अच्छा होता कि ये चारो जज अपनी पीडा मीडिया मे व्यक्त न करके न्यायधीशों की पूरी संख्या को बिठाकर निर्णय करते तब अच्छा था । मै इस संबंध मे शेखर जी से सहमत नही हूॅ । जहां तक न्यायपालिका की छवि को नुकसान होने का प्रष्न है तो मेरे विचार मे न्यायपालिका की छवि सुधरेगी। न्यायपालिका अपना काम छोडकर जनहित याचिकाओ के माध्यम से प्रसिद्धि की दौड मे आगे जाने का प्रयास कर रही थी। स्वाभाविक है उस दौड मे भी न्यायाधीषो के बीच प्रतिस्पर्धा शुरू होती है और वह हुई। अच्छा हुआ कि न्यायपालिका का बढा हुआ मनोबल कुछ टूटना शुरू शुरू हुआ और वह सर्वोच्च बनने की दौड से पीछे हटेगी। वर्तमान स्थिति की तुलना इंदिरा काल से नही की जा सकती। उस समय विधायिका अंतिम रूप से सर्वोच्च हो गई थी किन्तु वर्तमान समय मे न्यायपालिका सर्वोच्च बनने का प्रयास कर रही है जिसे मोदी सरकार ने पहली बार चुनौती दी है। भविष्य क्या होगा यह पता नही किन्तु यह दुखद है कि विधायिका और न्यायपालिका के बीच सर्वोच्चता की दौड जारी है। पहले विधायिका अपने को सर्वोच्च मानती थी तो बाद मे न्यायपालिका अपने को सर्वोच्च मानने लगी। यदि विधायिका अधिक मजबूत हुई तब भी उसके परिणाम घातक होंगे। अच्छा हो कि न्यायपालिका और विधायिका सच्चाई को समझकर लोक को सवोच्च मानना शुरू कर दे तो सारी समस्या अपने आप सुलझ जायेगी । लूट के माल मे बटवारे के झगडे को समाप्त करने का सबसे अच्छा समाधान यही होता है कि वह माल उसके वास्तविक मालिक को वापस कर दिया जाये।